

राज्य गठन में उत्तराखण्ड क्रान्ति दल की भूमिका : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० भैरव दत्त*

सारांश

स्वतन्त्रोत्तर उत्तराखण्ड में राजनैतिक गतिविधियों से संबन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन विगत वर्षों में हो चुका है और जारी भी है, परन्तु कुछ राजनैतिक गतिविधियाँ जो कि महत्त्वपूर्ण व ज्ञान की दृष्टि से आवश्यक हैं, का अध्ययन व्यापक परिपेक्ष में होना अभी बाकी है। स्वतन्त्रता के पश्चात् होने वाली कई प्रमुख राजनैतिक गतिविधियों में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना पृथक राज्य के गठन के लिये की गई राजनैतिक गतिविधियाँ रही हैं तथा इस कार्य में जिस राजनैतिक दल की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही उस क्षेत्रीय दल (उ.क्रा.द.)के विषय में उसकी राजनैतिक गतिविधियों का अध्ययन अभी व्यापक परिपेक्ष में होना बाकी है, ताकि उत्तराखण्ड में हुई राजनैतिक गतिविधियों को और अधिक उद्घटित किया जा सके।

स्वाधीनता के पश्चात् जब अपना देश, अपना संविधान, अपना शासन, अपना प्रशासन हो गया, तो समूचे भारत की ही भाँति उत्तराखण्ड की जनता को भी लगा कि अब हमारी विभिन्न बुनियादी समस्याओं का समाधान हो पायेगा। गुलामी के दिनों की वह लाचारी बेबसी अब न रहेगी। सदियों से शोषित, उत्पीड़ित, दूरस्थ, पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले समाज की रोटी, कपडा, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, रोजगार, गरीबी, भुखमरी आदि समस्याओं का समाधान हो सकेगा। विश्व में हो रहे परिवर्तनों राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक क्रान्तियाँ उनके जीवन में भी नया सवेरा ला सकेंगी। दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता के कई दशकों बाद भी इस दिशा में कोई ठोस पहल नहीं हुई। समस्याओं का समाधान सिर्फ शहरी व अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित रहा। शासन की अनियंत्रित, अनियमित विकास, अदूरदर्शी, भेद-भाव पूर्ण नीतियों, निरंतर क्षेत्र विशेष की उपेक्षा से जनता में अविश्वास की भावना ने जन्म लिया। फलस्वरूप उत्तराखण्ड में कई राष्ट्रीय राजनैतिक दल, क्षेत्रीय दल, आन्दोलनकारी ताकतें, दवाब समूह, संगठन आदि जनता की समस्याओं के समाधान तथा सत्ता की अभिलाषा में आगे आये और अपनी राजनैतिक गतिविधियाँ शुरू कीं, जो अब भी जारी है ! उत्तराखण्ड की जनता की समस्याओं के समाधान के लिए एक विचार, एक सोच जो कि 1947 से पहले ही जन्म ले चुकी थी अब पुनः आकार लेने लगी थी वह थी, पृथक राज्य की मांग। विभिन्न संगठनों को जनता की समस्याओं का समाधान पृथक राज्य में नजर आया तथा उन्होंने अपनी राजनैतिक गतिविधियाँ भी उस दिशा में केन्द्रित की। एसी सोच के तहत 1979 में एक क्षेत्रीय राजनैतिक दल का गठन हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य ही जनता की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए पृथक राज्य का गठन था ।

विभिन्न राजनैतिक दलों की गतिविधियों के साथ ही उ.क्रा.द. का जन्म उसकी विचारधारा, उसके कार्यक्रम घोषणापत्र, उसका संविधान, उसकी संघर्ष यात्रा, उसकी राजनैतिक गतिविधियाँ, उसका नेतृत्व संगठन, राज्य गठन से पूर्व व बाद में उसकी गतिविधियों पर एक तार्किक विवेचना पूर्ण अध्ययन कर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

शोध प्राविधि- उपरोक्त विषय पर शोधार्थी द्वारा उत्तराखण्ड में स्वतंत्रता के पूर्व व बाद में हुई विभिन्न राजनैतिक दलों, समूहों, संगठनों, आन्दोलनकारी, शक्तियों, क्षेत्रीय दलों की गतिविधियों, उनके क्रियाकलापों से सम्बन्धित साहित्य, पुस्तकों, समाचार पत्रों में छपे लेख, राजनैतिक दलों संगठनों से अध्ययन करने तथा निकट से जानने का प्रयास किया जा रहा है। कई मुख्यपत्रों, उनके राजनैतिक प्रस्तावों, प्रेस विज्ञप्तियों, उनके शीर्ष नेताओं के साक्षात्कार, उनकी संसद विधान मंडलों, पंचायतों में उपस्थिति, उनके द्वारा की गयी आंदोलनात्मक गतिविधियों का विभिन्न स्रोतों की राजनैतिक गतिविधियों में शामिल रहा है !

*रतनखाल, मानिला, अल्मोड़ा

अपनी स्थापना के साथ उत्तराखण्ड क्रांति दल पर जनभावनाओं की कसौटी पर खरे उतरने का भारी दबाव रहा। वह इसलिये भी कि राज्य की मांग करने वाली वह पहली शक्ति नहीं थी या यूँ समझा जा सकता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में वह एक ऐसे नारे को लेकर आये थे जिसे आम जनता तो नहीं समझ पा रही थी, हाँ इसके निहितार्थ दबाव बना सकने की स्थिति का लाभ उठाने की राजनीतिक दल सोच सकते थे। लेकिन वह इस मामले में ज्यादा शक्ति इसलिये जाया नहीं करना चाहते थे, क्योंकि कुछ सामाजिक संगठनों की इस माँग के अलावा इसका राजनीतिक रूप न लेना उनके लिये ज्यादा नुकसानदेह नहीं था। इतना ही नहीं जब राज्य निर्माण के लिये उत्तराखण्ड क्रांति दल के नाम से क्षेत्रीय राजनीतिक संगठन बन रहा था। तब बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रिया न केवल निराशाजनक थी, बल्कि उन्होंने इसके संस्थापकों को 'हताश राजनीतिज्ञ' और इसमें शामिल बुद्धिजीवियों को 'पहाड़ के संघर्षों से भाग गये लोगों का जमावड़ा' बताया। यह टिप्पणी किसी राज्य विरोधी की नहीं, बल्कि पहाड़ के हितों की बात करने वाले एक पाक्षिक 'नैनीताल समाचार' की थी। इस समाचार पत्र के संपादक को इस बात की शंका थी कि प्रस्तावित राज्य को क्या हम हिन्दुस्तान में व्याप्त बुराइयों से दूर रख पायेंगे? हम उसके एक छोटे से हिस्से उत्तराखण्ड का चेहरा बदल उसे 'नखिस्तान' बना सकते हैं। उपरोक्त उदाहरण से समझा जा सकता है कि दल के सामने बड़ी चुनौती इसी बात की थी कि आम जनता से दूर पहले समाज में तेजी के साथ संदेश फैलाने वाले लोगों को कैसे राज्य के प्रति सकारात्मक सोच बनाने के लिये तैयार किया जाये। यह चुनौती इसलिये भी ज्यादा गंभीर थी, क्योंकि राज्य की मांग भले ही सड़क पर कभी दमदार ढंग से न लड़ी गयी हो लेकिन कहीं-न-कहीं राज्य की बात लोगों के मन में थी। इसे आंदोलन के रूप में तब्दील करना कठिन था। आजादी से पहले 1928 और 1938 में रामनगर और पौड़ी के कांग्रेस सम्मेलनों में पृथक प्रशासनिक इकाई के रूप में इस क्षेत्र की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया था। 1952 में कामरेड पी०सी० जोशी ने राष्ट्रीय स्तर पर राज्य के सवाल को उठाया भी। सड़क पर सबसे पहले 1969 और 1972 में ऋषिबल्लभ सुन्दरियाल और सांसद त्रेपन सिंह नेगी के नेतृत्व में दिल्ली में प्रदर्शन हो चुके थे। टिहरी के राजा और सांसद मानवेन्द्र शाह, इन्द्रमणि बड़ोनी, त्रेपन सिंह नेगी आदि ने इस दिशा में पहल भी की, लेकिन न तो राज्य के लिये व्यापक विचार बना और न ही इसके लिये राजनीतिक जन गोलबंदी हो पायी। वस्तुतः राज्य की माँग राजनीतिक थी और इसका समाधान भी राजनीतिक कार्यक्रम से होना था, लेकिन तमाम संगठन इसे गैर राजनीतिक मंच से लड़ने की भूल कर रहे थे। इसे राजनीतिक माँग में तब्दील करने की चुनौती नवगठित उक्रांद को विरासत में मिली। उक्रांद ने इन चुनौतियों को बखूबी स्वीकार किया। एक क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी होने के बावजूद दल ने कभी यहां के हितों को वोट की राजनीति के चश्मे से नहीं देखा। यही कारण है कि वह यहाँ के जनांदोलनों का वाहक तो बन गया लेकिन कभी एक राजनीतिक शक्ति के रूप में नहीं उभर पाया। जुलाई, 1979 में जब दल का गठन हुआ तो उसे लोगों को राज्य की प्रासंगिकता भी बतानी थी और उपेक्षा से उपजी जन समस्याओं का समाधान भी करना था। इन दोनों मोर्चों पर चलना आसान नहीं था। दल को राज्य के सवाल को लोगों के बीच ले जाना जितना संकट था इसका पता इसी बात से लग जाता है अपनी स्थापना के सात साल तक वह कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं दे पायी जिससे जनता उक्रांद पर विश्वास करे। हालांकि रानीखेत से 1980 और डीडीहाट से 1985 में दो विधायक चुने गये, लेकिन जनता का राज्य के प्रति विशेष लगाव नहीं दिखाई दिया। 25 जुलाई 1986 को युवा नेता और डीडीहाट से विधायक काशी सिंह ऐरी को दल का अध्यक्ष बनाया गया। उनके नेतृत्व में 10 नवंबर, 1986 को नैनीताल, 9 मार्च, 1987 को पौड़ी और 23 नवंबर, 1987 को दिल्ली के बोट क्लब में विशाल रैली कर राज्य की आवाज को दमदार तरीके से रखना शुरू किया। यही वह समय था जब उक्रांद ने अपनी कसौटी पर खरा उतरना शुरू किया। दल ने सबसे महत्वपूर्ण काम किया कि जब उसने राज्य की बात को कहा तो उसके मूल में उस उत्कंठा को भी जाग्रत किया जो लंबे समय से यहाँ की जनता में सोयी पड़ी थी। राज्य आंदोलन में खरे उतरने के लिये जनता में उन मुद्दों को लेकर भी विश्वास पैदा करने की जरूरत थी जो उसकी मूलभूत जरूरतों से जुड़े थे। इसमें कोई दो राय नहीं कि 1987 से लोगों का विश्वास उक्रांद के प्रति होने लगा था। जनता की मूलभूत जरूरतों के सवाल और बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा और स्वास्थ्य के मुद्दों पर जनांदोलनों की शुरुआत से लोगों को लगा कि क्षेत्र के विकास के लिये क्षेत्रीय ताकत के रूप में उक्रांद को आगे आना चाहिये। इस विश्वास को कायम कर पार्टी ने राज्य संघर्ष के लिये एक मजबूत जमीन तैयार की। राज्य आंदोलन की कसौटी पर खरा उतरने के लिये यह भी जरूरी था कि वह इस बात को जनता को समझाये कि राजनीतिक रूप से ताकतवर समाज हमेशा अपने अनुकूल माहौल बना लेता है। जिस समाज की राजनीतिक शक्ति जितनी कमजोर होगी वहाँ के विकास का ढाँचा भी उतना ही कमजोर होगा। इस बात को बताने के लिये जहाँ संसदीय लोकतंत्र में प्रभावी हिस्सेदारी करनी थी वहीं इस भ्रम को भी समाप्त करना था कि पहाड़ से राजनीति में हमेशा प्रभावी दखल रखने वाले पैदा होते रहे हैं। उत्तर प्रदेश के पहले मुख्यमंत्री पं. गोबिन्दबल्लभ पंत, हेमवतीनन्दन बहुगुणा, के०सी० पंत, नारायणदत्त तिवारी जैसे नेताओं के रहते यदि पहाड़ का राजनीतिक रूप से

शक्तिशाली नहीं बना जनता को उसका हक पाया तो क्या क्षेत्रीय ताकत दिला सकती है? इस बात पर वजन भी था, क्योंकि जो कांग्रेस सिद्धांततः आजादी से पहले पृथक प्रशासनिक इकाई की अनिवार्यता को स्वीकारती रही थी, उसने आजादी के बाद राज्य की बात तो दूर यहाँ की जनता से हकों को छीनना शुरू कर दिया। पहले जनसंघ और बाद में भाजपा ने भी यहाँ की जनता को अपने राजनीतिक हितों के लिये इस्तेमाल किया। इन दलों के प्रभावी तंत्र ने अंसतोष को कभी उभरने नहीं दिया। छिटपुट आंदोलनों को छोड़ दिया जाये तो उत्तराखंड में व्यापक स्तर पर लोगों को जोड़ने का काम नहीं हो पाया। अस्सी के दशक में उक्रांद ने इस क्षेत्र में नई राजनीतिक चेतना की शुरुआत की। इससे पहले भी पहाड़ में जितने आंदोलन हुये उनमें समाजवादी लोगों की भूमिका प्रमुख थी। जंगलों पर अधिकारों को लेकर 1974 में चले 'वन बचाओ आंदोलन' की अगुवाई में समाजवादी ही थे। बाद में उक्रांद में शामिल सभी लोग समाजवादी विचारधारा से ही थे। 1984 में 'उत्तराखंड संघर्ष वाहिनी' द्वारा चलाये गये 'नशा नहीं-रोजगार दो' आंदोलन में भी दल की भागीदारी रही। उक्रांद ने सबसे पहले पहाड़ में जनपक्षीय राजनीतिक विचारधारा को प्रभावी बनाने की शुरुआत की। जो बड़े राजनीतिक दल आज तक जनता को छल रहे थे उनकी असलियत को भी जनता समझने लगी है। उक्रांद ने लोगों को आंदोलन का जो संबल प्रदान किया उसका ही परिणाम था कि जब 1994 की निर्णायक लड़ाई हुयी तो उसमें जनता ने नई जान फूंक दी। ऐसा नहीं है कि यह आंदोलन एक रात में खड़ा हो गया, उसके लिये उक्रांद ने ठोस जमीन तैयार की थी। उक्रांद ने 1988 में 'वन अधिनियम' जैसे काले कानून के खिलाफ जो लड़ाई लड़ी उसे तमाम राजनीतिक दल कटघरे में खड़े हो गये। सन् 1989 में एक क्षेत्रीय राजनीतिक शक्ति के रूप में दल को स्वीकारा गया। दल के दो विधायक चुने गये। लोकसभा की दो सीटों पर पार्टी प्रत्याशी बहुत कम अंतर से हारे। यह अलग बात है कि संगठनात्मक रूप से उक्रांद कभी मजबूत नहीं रहा लेकिन उसके विचार के साथ उत्तराखंड की जनता हमेशा खड़ी रही। चूंकि दल का गठन एक मिशन को लेकर हुआ था। इसलिये कभी भी वह किसी भी तरह सत्ता में पहुंचने की होड़ में शामिल नहीं रहा। क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी होने के बाद भी उसका स्वरूप हमेशा आंदोलनकारी संगठन का बना रहा। अपनी इसी सोच के कारण 1996 के चुनाव में जहाँ उक्रांद ने 'राज्य नहीं तो चुनाव नहीं' का नारा देकर राज्य की माँग को तेज कर रहा था वहीं राष्ट्रीय राजनीतिक दल राज्य आंदोलनकारियों की शहादत पर वोट माँग रहे थे। जब राज्य बना तो उसका श्रेय भी वह शक्तियाँ ले गयीं जो हमेशा इसे अलगाववादी कहती रहीं। यही उक्रांद राज्य आंदोलन की कसौटी पर खरा उतरा। उसने सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को पृथक राज्य की बात को स्वीकार करने पर मजबूर किया।

पृथक राज्य के अस्तित्व को समझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका

उक्रांद की राज्य आंदोलन में भूमिका की विवेचना के लिये उस समय सामाजिक और बौद्धिक संगठनों की भूमिका को समझना जरूरी होगा। जब उक्रांद पृथक राज्य आंदोलन की धार को तेज कर रहा था तब इन संगठनों का रुख बहुत सहयोगात्मक नहीं रहा। वह यह तो समझ रहे थे कि उक्रांद राज्य की माँग और यहाँ के तत्कालीन सवालियों को ठीक तरह से रख रहा है, लेकिन उनकी दिक्कत यह थी वे इसमें शामिल होने में हिचक रहे थे। उनके सामने अलग किस्म के खतरे थे। ये संगठन राज्य के सवाल पर सेमिनार भी करते बातचीत का कोई मंच भी तैयार करते, लेकिन कभी राज्य की बात को उस तरह से स्वीकार नहीं करते जैसी उस समय जरूरत थी। उक्रांद के नेता काशी सिंह ऐरी ने 2004 के लोकसभा चुनाव के दौरान अल्मोड़ा की एक सभा में इस बात को बहुत सटीक तरीके से रखा। उन्होंने बताया कि 1988 में अल्मोड़ा में एक सेमिनार का आयोजन किया गया था, जिसकी अध्यक्षता वयोवृद्ध पत्रकार पी0सी0 जोशी कर रहे थे। इस सेमिनार में जब ऐरी को बोलने के लिये बुलाया गया तो मंच संचालक ने यह शर्त रख दी कि आप सेमिनार में सारी बातें कर सकते हैं लेकिन राज्य की बात न करें। अब बात करनी थी पहाड़ की और राज्य की बात न हो यह संभव नहीं था। मंच दूसरे का था इसलिये उनके अनुसार ही अपनी बात को रखा जा सकता था। तब उन्होंने एक कहानी सुनाई जो इस प्रकार है।

'एक राजा था। उसने एक हाथी पाला। राजा ने खितमदगारों से कह दिया कि हाथी की पूरी सेवा होनी चाहिये। इसे किसी प्रकार का दुख न हो इसका पूरा ख्याल रखा जाना चाहिये। राजा ने सभी को यह आदेश सुना दिया कि हाथी को कुछ नहीं होना चाहिये। जो कभी भी इसके मरने की सूचना देगा उसका सर कलम कर दिया जायेगा। खितमदगारों ने हाथी की खूब सेवा की। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। समय बीतता गया। प्रकृति का अपना नियम है। एक दिन हाथी भी चल बसा। अब खितमदगारों के सामने संकट यह था कि राजा को हाथी के मरने की खबर कैसे बताये। तब उन्होंने एक युक्ति निकाली। तय हुआ कि हाथी के मरने की सूचना टुकड़ों में दी जाये। एक ने राजा के पास जाकर कहा कि महाराज हाथी बहुत दिनों से कुछ खा नहीं रहा है। दूसरे ने कहा महाराज वह

पानी भी नहीं पी रहा है। तीसरे ने कहा महाराज वह हिलडुल भी नहीं रहा। चौथे ने कहा महाराज हाथी सांस भी नहीं ले रहा है। इन सब बातों को सुनकर राजा को गुस्सा आया बोला मूर्खों यह क्यों नहीं कहते कि हाथी मर गया है। खितमदगारों ने कहा महाराज यह हम नहीं आप कह रहे हैं।' इसी प्रकार उत्तराखण्ड राज्य की प्रासंगिकता और यहाँ की समस्याओं को समझते हुये भी सिर कटने के डर से राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों ने इसे टुकड़ों में कहा जिससे राज्य की माँग हमेशा कमजोर होती गयी। राज्य आंदोलन के प्रति लोगों की उस समय की भावना को पार्टी के महासचिव रहे विपिन त्रिपाठी भी कई बार अपने वक्तव्यों में सुनाते रहते थे। सन् 1969 में युवावस्था में विपिन त्रिपाठी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में थे। जसवन्त सिंह बिष्ट जी के चुनाव प्रचार में लाल टोपी पहनकर जब वे एक कस्बे में चुनाव प्रचार के लिये गये तो वहाँ शाम हो गयी। एक सेठजी की दुकान में बैठ गये। सेठजी से परिचय हुआ। त्रिपाठी जी ने बताया कि वह जसवन्त सिंह जी के चुनाव प्रचार में आये हैं। खुश होकर सेठ जी ने कहा कि तुम अच्छा काम कर रहे हो। बिष्ट जी तो महान आदमी हैं, उन्हें जीतना चाहिये। मेरी जान भी जसवन्त सिंह के लिये समर्पित है। बताओ मैं क्या कर सकता हूँ। त्रिपाठी जी ने कहा कि मुझे अब बहुत देर हो गयी है, यहां कोई परिचित भी नहीं है। रात को ठहरने के लिये जगह दे दीजिये। सेठजी ने कहा यह तो ठीक है लेकिन मैं रात को घर चला जाता हूँ। त्रिपाठी जी ने कहा आप मुझे बिस्तर दे दीजिये, मैं यहीं बाहर बैच में सो जाऊँगा। सेठजी ने कहा बिस्तर तो बिक्री के लिये है और बैच मैं रात को दरवाजे को अन्दर आड़ लगाने के लिये लगा देता हूँ। अब तुम अपनी व्यवस्था देख लो मैं दुकान बंद कर रहा हूँ। इस प्रकार जसवन्त सिंह को अपना खून देने वाला आदमी एक बिस्तर नहीं दे पाया। राज्य आंदोलन के लिये खून बहाने की बातें तो खूब हुयीं, लेकिन क्षेत्रीय ताकत को कमजोर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। इन दो वाक्यों से साफ हो जाता है कि एक तो मुद्दों को जबरदस्ती हाँशिए में धकेलने की कोशिशें हुयीं और दूसरा उक्रांद को राज्य का सबसे बड़ा हितैषी मानने के बाद भी अपने निजी स्वार्थों के लिये उसे कमजोर करने की साजिशें भी हमेशा चलती रहीं। सीधा सा मतलब यह कि अपने क्षणिक व्यक्तिगत और राजनीतिक स्वार्थों के लिये उत्तराखण्ड के हितों का चालाक और अवसरवादी लोग गला घोटते रहे। इसका सबसे अधिक नुकसान उक्रांद को उठाना पड़ा। हालांकि दल की स्थापना से पूर्व भी राज्य की मांग उठती रही थी लेकिन एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल के रूप में इस आंदोलन को नई पहचान और दिशा 1979 से ही मिली। क्षेत्रीय ताकत के रूप में उभरते इस दल को रोकने की साजिशों में विभिन्न संगठन, राजनीतिक दल, बुद्धिजीवियों की एक जमात और अपने हितों के लिये राजनीतिक समझौते करने वाले लोग सक्रिय रहे। क्षेत्रीय ताकत को कमजोर करने की शुरुआत राज्य के औचित्य को लेकर होने लगी। भ्रम फैलाया जाने लगा कि यह माँग अलगाववादी है। यह भी कहा जाने लगा कि राज्य बनने के बाद यहाँ के लोग क्या खायेंगे? सवाल ऐसे उठाये जाने लगे जैसे राज्य नहीं मानों प्रलय की बातें हो रही हैं। राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की बात तो छोड़िये जो लोग जनसंघर्षों से जुड़े थे वे भी सत्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। उक्रांद ने अपनी दस साल के सफर में यह समझाने में सफलता प्राप्त की कि राज्य के बिना पहाड़ का विकास संभव नहीं है। इसके साथ ही शुरु हुआ हमलों का दौर। उत्तराखण्ड संघर्ष वाहिनी, उत्तराखण्ड जन परिषद् तथा उत्तराखण्ड प्रगतिशील मंच के विलय से 1988 में एक नये दल के रूप में 'उत्तराखण्ड जनसंघर्ष वाहिनी' का निर्माण हुआ। यह संगठन उत्तराखण्ड राज्य आंदोलन में तो कोई योगदान नहीं कर पाया लेकिन चन्द लोगों के एक ग्रुप ने अल्मोड़ा में 'राष्ट्रीय बंधुआ मजदूर मोर्चा' के नेता स्वामी अग्निवेश, अखिल भारतीय सिख कॉन्फ्रेंस के गुरचरण सिंह बब्बर तथा झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के मानस सरकार को बुलाकर राज्य आंदोलन की दिशा को मोड़ने का प्रयास शुरु कर दिया। इस सम्मेलन में 'नये भारत में नया उत्तराखण्ड' का नारा दिया गया। हालांकि लोग इन नारे पर हँसा करते थे लेकिन उनके मंसूबे कहीं न कहीं कामयाब रहे। संघर्ष वाहिनी ने अपने को क्षेत्रीय राजनीतिक दल घोषित किया और झारखण्ड की तर्ज पर आंदोलन चलाने का संकल्प लिया। उत्तराखण्ड जन संघर्ष वाहिनी के अस्तित्व को फिर सभी ने जाना।

उत्तराखण्ड क्रांति दल के चलाये आंदोलन ने सभी संगठनों में अलग राज्य के अस्तित्व के भाव को तो जगाया लेकिन वह कभी भी इस दिशा में सकारात्मक रुख अपनाते नहीं दिखाई दिये। जिन सामाजिक संगठनों ने उक्रांद को क्षेत्रीय ताकत के रूप में मजबूत बनाना चाहिये था वह उसके समानान्तर खड़े हो गये। इसी बीच 'उत्तराखण्ड मुक्ति मोर्चा' का उदय हुआ। यह संगठन भी क्षेत्रीय हितों की बजाए ऐसे मुद्दों की बात करने लगा जो यहाँ के परिप्रेक्ष्य में हास्यास्पद थे। राज्य की मांग के नाम पर बना यह संगठन भारत के वास्तविक संघीय ढांचे की वकालत करने लगा। शुरुआती दौर में दिल्ली, मसूरी, उत्तरकाशी में सम्मेलन आयोजित किये। यह मोर्चा भी अकाल मौत मर गया, लेकिन यह भी उक्रांद के अभियान को रोकने की कोशिश थी। इसी बीच उक्रांद के समान एक नई पार्टी खड़ी करने का विचार कुछ ऐसे लोगों के मन में आया जिनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा अपने-अपने दलों में पूरी नहीं हो पा रही थी। इसमें विशेषकर प्रवासी संगठनों के लोग थे। उनमें कुछ ऐसे लोग भी थे जो उक्रांद के

संस्थापक होने का ढोल पीटा करते थे। यही उनका राज्य योगदान को भुनाने का साधन भी था। उत्तराखंड पार्टी के नाम से इस दल की स्थापना 1992 में हुयी। बड़े जोर-शोर से संसाधनों का ऐसा हौवा खड़ा किया गया कि लगा अब पहाड़ में भारी बदलाव आने वाला है। लेकिन यह टोली इतनी हल्की साबित हुयी कि स्वयं इसके अध्यक्ष कापड़ी को लोकसभा का टिकट पाने के लिये भाजपा से हाथ मिलाना पड़ा और उक्रांद के काशी सिंह ऐरी के खिलाफ चुनाव प्रचार में लग गये। क्षेत्रीय राजनीतिक ताकत को आगे बढ़ाने के लिये जब क्षेत्रीय संगठनों ने ही काम नहीं किया तो राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को आंदोलन को कमजोर करने का मौका मिल गया। वस्तुतः राज्य के नाम पर क्षेत्रीय संगठन जहाँ राज्य विरोधी शक्तियों को यहाँ आने का रास्ता दे रहे थे वहीं वह उक्रांद के समाप्त करने की साजिश भी करते रहे।

1987 में दिल्ली रैली के बाद उक्रांद ने पर्वतीय क्षेत्र में हो रहे शोषण और व्याप्त अव्यवस्था की ओर सरकार का ध्यान खींचा। इसका परिणाम यह हुआ कि घुटने टेककर राज्य का विरोध करने वाली कांग्रेस और उसके सांसद हरीश रावत ने पर्वतीय परिषद की बात कहनी शुरू कर दी। यह बात पहाड़ के हित के लिये नहीं बल्कि आंदोलन को कमजोर करने की चाल थी। कांग्रेस इस आंदोलन को तोड़ने और क्षेत्रीय ताकत के रूप में उक्रांद को कमजोर करने में लगी रही।

25 जुलाई, 1987 को भारतीय जनता पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष अटल बिहारी वाजपेयी ने उत्तराखंड की माँग को देशद्रोही और अलगवावादी कहकर खारिज कर दिया। जिस जनसंघ ने कभी राज्य की माँग करने पर अपने शीर्ष कार्यकर्ता ऋषिबल्लभ सुन्दरियाल को संगठन से निकाल दिया था उसी के नेता राज्य विरोधी सोबन सिंह जीना जो कभी कुमाऊँ-गढ़वाल, ठाकुर-ब्राह्मणों के सवाल को उठाया करते थे, अब उक्रांद की शक्ति से घबरा गये। राज्य की बात करने में भाजपा को कितना संकोच था इसका पता इसी बात से लगता है कि उसने पहले 'उत्तरांचल उत्थान परिषद्' का निर्माण किया। 30-31 जुलाई, 1987 को अल्मोड़ा में सोबन सिंह जीना की अध्यक्षता में चोर दरवाजे से राज्य की बात को स्वीकार किया। लेकिन परिषद के माध्यम से भाजपा ने राज्य की बात नहीं की बल्कि कहा कि परिषद् वृक्षारोपण, सौर ऊर्जा का विकास, प्रौढ़ शिक्षा, निर्धूम चूल्हों के प्रचार जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों पर अधिक जोर देगी।

इस मौके पर उक्रांद को निशाना बनाते हुये भाजपा नेता भगत सिंह कोश्यारी की ओर से जो प्रपत्र 'उत्तरांचल प्रदेश क्यों?' निकाला गया, उसमें कहा गया कि उक्रांद ने अपनी स्थापना के बाद दो चुनाव लड़े, लेकिन उसे उन्नीस विधानसभा सीटों में से एक से अधिक सीटें नहीं जीत सका। इस पुस्तिका के माध्यम से यह भी कहा गया कि 'उत्तराखंड' नाम अपनाने में मुख्यतः दो कठिनाइयाँ हैं। चीन के आक्रमण के बाद गढ़वाल और कुमाऊँ के तीन जिलों, उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ को मिलाकर एक नई कमिश्नरी बनाई गयी थी, उसका नाम उत्तराखंड रखा गया था। अतः उत्तराखंड शब्द कुमाऊँ-गढ़वाल के सीमित क्षेत्र का बोध कराता है। इससे भी महत्त्व का कारण यह है कि पश्चिम बंगाल में 1969 में उत्तराखंड, सभी उत्तरखंड दल उनके प्रदेश के उत्तर में पाँच जिलों के लिये अलग राज्य की माँग कर रहा है। इस आंदोलन को भी उत्तराखंड आंदोलन के नाम से जाना जाता है। उक्रांद की स्थापना से दस वर्ष पूर्व यह आंदोलन उत्तराखंड के नाम से जुड़ा है। उत्तराखंड नाम रखने से उपर्युक्त भ्रांतियाँ निर्मित हो सकती हैं। वर्तमान समय में दो ही नाम प्रयुक्त हैं इसलिये 'उत्तरांचल' नाम समाचीन प्रतीत होता है। यह नाम हिमांचल और अरुणांचल से भी मिलता-जुलता है जिन्होंने शांतिपूर्वक रीति से राज्य का दर्जा प्राप्त किया।

इन कुतर्कों को गढ़ने का सीधा सा अर्थ था कि लोगों के मन में अपने विकास के लिये जागृती हुयी उत्कंठा को समाप्त किया जाये। असल में भाजपा और कांग्रेस दोनों को ही इस बात का डर था कि यदि समय रहते इन ताकतों को नहीं रोका गया तो पहाड़ में उनका राजनीति करना मुश्किल हो जायेगा। अपने मकसद में वे कामयाब भी हुये। उक्रांद के लिये उस समय सबसे बड़ी चुनौती यही थी कि वह कैसे राज्य के सवाल को लोगों के सामने ले जाये और उसे जनता की उन्नति के साथ जोड़े। तमाम क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन एक बड़ी घेराबंदी कर चुके थे। उक्रांद को इस बात का श्रेय जाता है उसने सबसे पहले इन्हें इस बात को मानने के लिये मजबूर किया कि राज्य का सवाल पहाड़ की अस्मिता के साथ जुड़ा है। कांग्रेस ने पहले इसे पर्वतीय परिषद के रूप में माना। बाद में उसने इसे केन्द्र शासित राज्य बनाने की बात कही। अन्ततः उसे मानना पड़ा कि राज्य से कम में जनता मानने वाली नहीं है। यही वजह है कि जब केन्द्र में पृथक उत्तराखंड राज्य का विधेयक आया तो कांग्रेस लाख चाहते हुये भी उसका विरोध नहीं कर पायी। भाजपा जिसने बहुत गहरी राजनीति के तहत राज्य के सवाल को हाईजैक किया था। वह उत्तरांचल राज्य के नारे के नाम पर कुछ न कुछ करती रही। हालांकि वह इस

पर कभी कोई आंदोलन खड़ा नहीं कर पायी, लेकिन 1991 के बाद वह किसी न किसी रूप में इससे जुड़ने की जुगत में लगी रही। बाद में उत्तर प्रदेश की विधानसभा में अपनी सरकार के रहते उसने राज्य का संकल्प भी पारित कराया। इन सब राजनीतिक दलों को इसके लिये तैयार करने का श्रेय उक्रांद को जाता है। उसने आंदोलन से जो माहौल बनाया उसमें राजनीतिक दल फंस गये। उक्रांद का राज्य आंदोलन में यह सबसे बड़ा योगदान है कि उसने राज्य के सामाजिक और राजनीतिक संगठनों के साथ जनता को भी इस बात से सहमत किया कि राज्य बने बिना यहाँ का विकास संभव नहीं है।

उक्रांद ने बदला क्षेत्रवाद का दर्शन :

आजादी के बाद देश में पृथक राज्यों की माँग ने तेजी पकड़ ली। 1950 में जब भारत का संविधान लागू हुआ तो राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया को जानबूझकर अत्यन्त आसान बनाया गया ताकि भविष्य में स्थानीय आकांक्षाओं एवं जरूरतों के मुताबिक छोटे-छोटे राज्य बनाये जा सकें। इसके साथ ही अनुच्छेद तीन में संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह कानून बनाकर नये राज्यों का सृजन करे या कई राज्यों को मिलाकर नया राज्य बनाये। संविधान के अनुच्छेद तीन में प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग सबसे पहले 1953 में किया गया जब भाषायी आधार पर पहला राज्य आंध्र प्रदेश बना। स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित जितने भी आंदोलन किये गये उन सभी में भाषायी एकरूपता तथा पहचान के मुद्दे प्रमुख रूप से उभरते थे। आंध्र प्रदेश का निर्माण भाषायी आधार पर हुआ था। तेलगूभाषी आंध्र प्रदेश का सृजन मद्रास से अलग कर किया गया। इसी प्रकार 'राज्य पुनर्गठन अधिनियम', 1956 द्वारा केरल राज्य अस्तित्व में आया। पेप्सीको पंजाब में, मध्य भारत, बिंध्य तथा भोपाल को मध्य प्रदेश में तथा अलवर को राजस्थान में मिला दिया गया। हैदराबाद के तेलंगाना क्षेत्र को आंध्र में तथा कुर्म सहित अन्य क्षेत्रों को कर्नाटक में मिला दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, बंबई, जम्मू-कश्मीर, केरल, मध्य-प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश तथा पश्चिम-बंगाल के नाम से चौदह राज्यों का गठन किया गया। बाद में 'बंबई पुनर्गठन अधिनियम', 1960 द्वारा गुजरात तथा महाराष्ट्र का गठन किया गया। बाद में पंजाब के पहाड़ी क्षेत्र को 'हिमाचल' के नाम से 1970 में अलग राज्य का दर्जा मिल सका। सत्तर के दशक तक पृथक राज्य के लिये उठी सभी मांगों में भाषायी तथा क्षेत्रीय पहचान के सवाल प्रमुख थे। इनमें क्षेत्रीय विकास के मुद्दे गौण होते थे। इसलिये 1971 तक गठित होने वाले सभी राज्य कमोबेश भाषा और क्षेत्र के आधार पर बनाये गये। 1979 में अपनी एक सूत्रीय उत्तराखंड राज्य की माँग को लेकर गठित क्षेत्रीय दल उत्तराखंड क्रान्ति दल ने सबसे पहले देश में जाति, क्षेत्र और भाषा के आधार पर सृजित किये जाने वाले विचार को समाप्त करने की पहल की।

उत्तराखंड क्रान्ति दल ने देश में नये राज्यों के सृजन के लिये नया विचार पैदा किया। भावनात्मक मुद्दों की जगह अब राज्य की माँग क्षेत्रीय पिछड़ेपन को दूर करने के लिये विकास पर जोर देने लगी है। जनसमर्थन के लिये जब आँकड़ों का प्रयोग होता है तो समस्याओं का राजनीतिक समाधान करना ज्यादा आसान हो जाता है। क्योंकि समस्याओं का तार्किक हल होते ही आंदोलन स्वतः समाप्त हो जाता है। यही देश के पिछड़े क्षेत्र के साथ नीति-नियंताओं ने किया। उत्तराखंड क्रान्ति दल द्वारा 1979 से चलाये गये राज्य आंदोलन पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इसके पीछे क्षेत्र का विकास ही प्रमुख मुद्दा रहा है। उक्रांद का मानना था कि केन्द्र और राज्य सरकार कभी भी यहाँ के विकास पर ध्यान नहीं देते हैं। जिसके कारण क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ा रह गया है। पार्टी का यह भी मानना था कि यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रदेश के अन्य भागों से भिन्न हैं। दिल्ली और लखनऊ में बैठे नीति-नियंता यहाँ की जमीनी सच्चाई को समझे बिना योजनायें बनाते हैं जिसका लाभ क्षेत्र को नहीं मिल पाता है। राज्य बन जाने के बाद इस क्षेत्र की भौगोलिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप योजनायें बनायी जा सकेंगी तथा समाज का समन्वित विकास किया जा सकेगा। उक्रांद का तर्क लोगों को ठीक लगा। यदि 1996 से पहले के आँकड़ों को देखा जाये तो सरकार द्वारा अन्तर क्षेत्रीय विकास के मापदंड के रूप में प्रयुक्त इंडेक्स को अगर आधार माना जाये तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश के विकासात्मक स्थिति का इंडेक्स 186.52 था, जबकि उत्तराखंड का यह इंडेक्स मात्रा 86.03 था। इसी प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कुल 4500 औद्योगिक इकाइयाँ थीं, जिनमें 3000 करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी। उत्तराखंड की 450 इकाइयों में कुल 400 करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी। दरअसल इस बात को कहने की यहाँ इसलिये आवश्यकता है कि उक्रांद के इसी राजनीतिक दर्शन को यह श्रेय जाता है कि उसने देश में विकास की दृष्टि से उपेक्षित किये गये क्षेत्रों के विकास के संबंध में एक सार्थक बहस शुरू की। अब अपने-अपने क्षेत्रों में विकास के लिये जिस तरह राज्य की आवश्यकता को लोग समझ रहे हैं उसका श्रेय भी उत्तराखंड राज्य आंदोलन को जाता है। उक्रांद के इस सफर ने सरकार को इस बात के लिये बाध्य

किया कि पृथक राज्य आंदोलनों को गंभीरता से लें, न कि उसे क्षेत्रवाद के नाम पर उपेक्षित करें। उत्तराखंड राज्य आंदोलन ने यह संदेश भी दिया कि वर्षों से चल रहे इन आंदोलनों को उपेक्षित रखना भी अन्याय होगा क्योंकि लोगों में बढ़ रही चेतना अधिक दिनों तक उपेक्षा सह नहीं पायेगी। जो लोग छोटे राज्य आंदोलनों को शंका की नजर से देखते थे, इसे देश की एकता और अखंडता के लिये खतरा मानते थे, वह भी उत्तराखंड राज्य आंदोलन की सफलता से हतोत्साहित हुये। भाजपा और कांग्रेस जैसी राजनीतिक पार्टियों ने तो हमेशा इसे अलगाववाद और क्षेत्रवाद के नजरिये से देखा। उक्रांद द्वारा दो दशक तक चलाये इस आंदोलन ने इन पार्टियों को इसके समर्थन में आने को मजबूर किया। जबकि ये लोग 'बोडो आंदोलनकारियों' द्वारा किये गये उपद्रवों को उत्तराखंड आंदोलन के फलितार्थ मानते हुये उसके सूत्र इन आंदोलनों में ढूढने लगते थे। सभी जानते हैं कि 'बोडो समस्या' बांग्लादेश से आये 'शरणार्थियों' से बोडो समुदाय में फैली असुरक्षा तथा सांस्कृतिक पहचान के खतरे से उत्पन्न हुयी थी जिसका उत्तराखंड समस्यायें दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। उत्तराखंड राज्य की माँग के साथ जिन अन्य राज्यों के लिये सतत आंदोलन चलाया गया उसमें 'झारखंड' और 'गौरखालैंड' प्रमुख थे। छत्तीसगढ़ जैसा राज्य उत्तराखंड राज्य आंदोलन की छाया में बन गया। जहाँ तक झारखंड और गौरखालैंड का सवाल है, ये आंदोलन हमेशा अपनी पहचान के सवाल को लेकर ही मुखर हुये। इन दोनों आंदोलनों को देश की जनता कभी मन से स्वीकार नहीं कर पायी। इसका सबसे बड़ा कारण इनका अतिवादी चेहरा होना था। यही कारण है कि गौरखालैंड आंदोलन को 'पर्वतीय परिषद' बनाकर तोड़ा गया। झारखंड का आंदोलन भी अंतिम समय पर राजनीतिक समझौतों की भेंट चढ़ गया। ऐसे में उत्तराखंड राज्य सभी पृथक राज्य आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत बन गया।

उक्रांद ने राज्य प्राप्ति के लिये जिस अहिंसक तरीके को अपनाया उससे पृथक राज्य आंदोलन के नाम पर हिंसा फैलाने वालों को सबक मिला है। उक्रांद ने यह भी साबित किया कि जनतांत्रिक तरीके से भी शांतिप्रिय आंदोलन चलाकर भी अपनी माँगों को मनवाया जा सकता है। इसका प्रमाण 1994 का आंदोलन है। उस दौर में जब प्रदेश की मुलायम सिंह यादव की सरकार आंदोलनकारियों पर सरकारी हिंसा कर जुल्म ढा रही थी तब भी इसमें अतिवादी ताकतें नहीं घुस पायी। राजनीतिक दलों ने दिल्ली रैली और अन्य जगहों पर हालांकि ऐसा माहौल पैदा करने का प्रयास किया। उक्रांद द्वारा चलाया गया आंदोलन अन्य आंदोलनों से भिन्न रहा। पार्टी ने आंदोलन को वैचारिक दिशा दी। उक्रांद देशभर में इस संदेश को पहुंचाने में कामयाब रहा कि राज्य आंदोलन के नाम पर देश की एकता और अखंडता के साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता है। उक्रांद द्वारा चलाये आंदोलन से देश के पिछड़े क्षेत्रों में यह भी संदेश गया कि जब तक उनमें विकास की उत्कंठा जाग्रत नहीं होगी उनकी समस्यायें ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। बिना सत्ता में भागीदारी के विकास का सपना पूरा नहीं होगा। राज्य पुनर्गठन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आजादी के बाद मात्र एक बार तर्कसंगत विचार हुआ, जब 1953 में फजल अली की अध्यक्षता में प्रथम 'राज्य पुनर्गठन आयोग' गठित किया गया। आयोग ने सराहनीय कार्य किया लेकिन सरकार ने आयोग की सिफारिशों को अनदेखा कर दिया, जो राज्य बनने की सारी शर्तें पूरी करते थे। यद्यपि बाद में टुकड़ों में राज्यों का सृजन किया जाता रहा, लेकिन वह या तो अलगाववादी खतरों की शंका या राजनीतिक दबाव अथवा हित-लाभ में किया गया। चूंकि इस दिशा में कोई नीति नहीं बन पायी, जिससे बहुत से क्षेत्रों की माँग को अनदेखी कर दिया। धीरे-धीरे यह क्षेत्र विकास के मामले में बहुत पिछड़ गये। इस उपेक्षा ने यहाँ के लोगों में विकास की सोच कम और अपनी पहचान को लेकर उग्र आंदोलनों का सहारा लेना पड़ा। सरकार की इस जनविरोधी उपेक्षा का ही कारण था कि राज्य की माँग विकास की जगह अलगाववादी माँग के रूप में अपनी पहचान बनाने लगे। ऐसे समय में उक्रांद ने देश में उठ रही अन्य क्षेत्रों में राज्य की माँगों को नई दिशा दी।

उक्रांद ने अपनी राजनीतिक सोच से बताया कि भावनात्मक और क्षेत्रीय मुद्दे एक साजिश के तहत आंदोलनों को कमजोर करने के लिये उठाये जाते हैं। सही अर्थों में यह माँगें आर्थिक पिछड़ेपन को लेकर उपजी हैं। इन क्षेत्रों में आजादी के बाद से ही अल्प राजनीतिक प्रतिनिधित्व या दुरुह भौगोलिक स्थिति के कारण उपेक्षा सहन करनी पड़ रही है। जिसके कारण बड़े राज्यों में सिसकते यह क्षेत्र विकास में पिछड़ गये हैं।

उक्रांद ने इसी चिन्ता को लेकर अपनी यात्रा शुरू की। धीरे-धीरे यह चेतना पूरे देश में फैली। झारखंड जैसे उग्र आंदोलन की धार भी लोकतांत्रिक तरीके में परिवर्तित हुयी। इस राजनीतिक जनचेतना ने अन्य क्षेत्रों को भी इसके लिये जागरूक बनाया कि वह अपनी स्थितियों में परिवर्तन लाने के लिये कमर कसें। पृथक राज्य आंदोलन की एक समस्या यह भी रही है कि इसकी अलगाववादी या क्षेत्रवादी कहकर अकसर आलोचना की जाती है। इसलिये इन माँगों को एकदम स्वीकार नहीं किया जाता। उत्तराखंड आंदोलन इस मामले में अलग था। उक्रांद यह समझाने में भी सफल रहा कि विभिन्न क्षेत्रों में पृथक राज्य की माँग हो रही है और वह विकास के अपने

साधनों और उपकरणों के आधार पर करना चाहते हैं। यह क्षेत्रवाद हमें अल्प समय के लिये देश की एकता पर कुठाराघात लग सकता है लेकिन इस क्षेत्रवाद में भी कहीं न कहीं देश के विकास के तत्व मौजूद हैं। उक्रांद ने सतत आंदोलन से सरकार को इस बात के लिये मजबूर किया कि वह समझे कि पिछड़े क्षेत्रों के लोगों को पूरा हक है कि वह राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल हों। सरकार को यह निर्मूल आशंका त्याग देनी चाहिये कि छोटे राज्य देश की एकता और अखंडता के लिये खतरा पैदा कर देंगे। उत्तराखंड आंदोलन ने यह साबित किया कि यदि सरकार अपनी हठधर्मिता नहीं छोड़ती तो राज्य आंदोलनों को अलगाववादी ताकतों के हाथों में जाने से नहीं रोका जा सकेगा।

संदर्भ

- 1 नैनीताल समाचार, 1980
- 2 उक्रांद नेता 'काशी सिंह ऐरी' के साथ हुई बातचीत के आधार पर।
- 3 उक्रांद के पूर्व अध्यक्ष स्व. 'श्री विपिन त्रिपाठी' के एक संस्मरण का अंश, धरोहर, चारु तिवारी। सुरेश नौटियाल, पृष्ठ 250
- 4 उत्तरांचल उत्थान परिषद का घोषणा पत्र, पृष्ठ 30, 31, जुलाई 1987
- 5 भगत सिंह कोश्यारी : उत्तरांचल प्रदेश क्यों ?
- 6 सुरेश भट्ट, शैल स्वर, मुरादाबाद, 1997